सम्पादक की कलम से

ऐसा लगता है पाकिस्तान की फौज ने किसी विशेष आदमी को बिना किसी वैध कारण के चुनाव जिताने का रास्ता निकाल लिया है। इमरान खान इसी तरह की पैदाईश हैं। चुनाव के बहुत पहले ही उनका नाम लिया जा रहा था। यह तय था कि फौज जो करना चाहती है उसके लिए कोई दूसरा व्यक्ति फिट नहीं था। नवाज शरीफ पूर्व में चुनाव जीते थे, लेकिन फौज ने उनमें अनेक पाई। फौज के पैमाने पर जनरल परवेज मुशर्रफ भी खरा नहीं उतरे।

फौज बीच में क्यों आ गई और उसने चुनाव की प्रक्रिया को खत्म क्यों कर दिया? फौज को लगा उसे एक ऐसे आदमी के जरिए सीधे शासन करना चाहिए जो अकड़ कर चलने वाले फौज की कतपुतली बनने में गर्व महसूस करे। क्रिकेटर से राजनीतिज्ञ बने इमरान खान राजनीति में काफी दिनों से हैं, लेकिन इस श्रेणी तक नहीं पहुंचे। जनरल जिया-उल हक और जनरल मुशर्रफ भी फौज के आदमी थे। उन्होंने मार्शल लॉ डिक्टेटर की तरह शासन किया और जनता को दूर कर दिया। जब नवाज शरीफ प्रधानमंत्री थे तो फौज की उपस्थिति हर तरह से नजर आती थी और जरूरत के हिसाब से कामों के संचालन के लिए कैबिनेट की बैठकों में भी भाग लेती दिखाई देती थी। अब जो प्रयोग हो रहा है उसमें ऐसे गैर-फौजी को शीर्ष पर बिठाया जाता है जो सोच और कामकाज में फौज का आदमी हो।

लोकतांत्रिक देशों ने साफ कह दिया है कि पाकिस्तान फौजी शासन में था। क्या पश्चिम में इमरान खान की ख्याती स्वीकार की जाएगी? आने वाले कुछ महीनों में उनके शासन से ही उसका सही स्थिती का पता चलेगा। इमरान खान पर यह निर्भर करेगा कि क्या वह दोनों शासकों- फौज और जनता को खुश कर पाते हैं। जहां तक भारत का सवाल प्रश्न है, उसकी भूमिका दर्शक की है। वह सर्जिकल स्ट्राइक कर सकता है जैसा वह एक बार कर चुका है। इससे कुछ भी ज्यादा युद्ध में तब्दील हो सकता है। अपनी पार्टी तहरीक-ए-इंसाफ के सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरने के बाद दिए गए अपने विजय-भाषण में इमरान खान ने कहा कि वे भारत के साथ अच्छे रिश्ता रखेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि अगर रिश्ते सुधारने के लिए भारत एक कदम बढ़ाता है तो वह दो कदम बढ़ाएंगे। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि कश्मीर केंद्रीय मुद्दा है।

इमरान खान यह भूल गए हैं कि कश्मीरी अब खुद का स्वतंत्र इस्लामिक गणराज्य बनाना चाहते हैं। दूसरे अर्थ में, वे मदद के लिए पाकिस्तान की ओर नहीं ताक रहे हैं। यहां तक कि यासीन मलिक और शब्बीर शाह जैसे लोग भी अब अप्रासंगिक हो गए हैं। अब कश्मीरी छात्रों भी पाकिस्तान-समर्थक नहीं रह गए हैं। उनकी नजर में, अपना शासन थोपने में नई दिल्ली और इस्लामाबाद एक समान हैं। इमरान उनके सोच को कैसे बदलेंगे जब वह यह मानते हैं कि दो ही पक्ष हैं- भारत और पाकिस्तान, जिन्हें मुद्दे का मर्म मालूम है?

पाकिस्तान के प्रधानमंत्री के लिए कश्मीरी युवक कोई पक्ष नहीं लगते क्योंकि समस्या सुलझाने की बातचीत में अब दो की जगह तीन पक्षों को बैठना पड़ेगा। जैसा विदेश मंत्री सुषमा स्वराज कह चुकी हैं, भारतीय पाकिस्तान से तब तक बातचीत नहीं करेंगे जब तक वह आतंकवादियों को पनाह देना बंद नहीं करता। इमरान खान जब भी सूत्र पकड़ें, क्या वह यह आश्वासन दे पाएंगे? इमरान ऐसी कठिन स्थिति में हैं कि अगर वह इस तरह का आश्वासन दे भी देते हैं तो इसे तब तक गंभीरता से नहीं लिया जाएगा जब तक सेना-प्रमुख उनकी बात का खुल कर समर्थन नहीं करते हैं। हाल में तो अभी तो इसका कोई संकेत दिखाई नहीं देता है। कुछ करने के लिए इमरान को पहले पांव जमाने पड़ेंगे। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि इमरान क्षेत्र में शांति चाहेंगे।

निर्णायक तौर पर, भारत की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ा कर इमरान ने राजनीतिक रूप से अपने को सही साबित कर दिया है और यहां तक कि कूटनीति में भी बढ़त पा ली है। लेकिन उनकी असल परीक्षा इसमें होगी कि भारत से संबंध सुधारने के लिए फौज उन्हें कितनी स्वतंत्रता देती है। यह अभी तक फौज के अधिकार-क्षेत्र में रहा है। फौज को अलग करने का होगा मतलब राज्य के प्रशासन में पूरी तरह बदलाव क्योंकि अभी उनका शासन नीचे गांव तक है।

दक्षिण एशिया के एक वरिष्ठ राजनितिज्ञ ने चुनाव नतीजों पर निराशा से भरे विचार जाहिर किए हैं और कहा है कि दुनिया का सबसे खतरनाक देश और खतरनाक हो गया है। विशेषज्ञ के अनुसार, इमरान खान फौज का खुल कर पक्ष लेने वाले और आईएसआई की सरपरस्ती में चलने वाले इस्लामिक आंदोलन से बहुत हद तक जुड़े हैं। यह अशुभ संकेत हैं। जाहिर है, अमेरिकी विदेश मंत्रालय ने पाकिस्तान में नेतृत्व परिवर्तन, जो अभी पूरा होना बाकी है, का स्वागत सतर्क होकर किया है।

इसकी वजह शायद यह है कि इमरान अमेरिका के मुखर आलोचक हैं और उनके मुताबिक, अमेरिका ने पाकिस्तान का इस्तेमाल 'पायदान' की तरह किया है। लेकिन सीआईए के पूर्व विशेषज्ञ और व्हाइट हाउस के अधिकारी ने इशारा किया है कि फौज के साथ इमरान की दोस्ती ज्यादा समय तक नहीं चलेगी। विशेषज्ञ के अनुसार, इमरान की छवि आजादी वाली और चंचलता की है और उनका राजनीतिक आंदोलन करीब-करीब व्यक्ति-पूजा है। यह इमरान के साथ संबंध रखने में फौज के लिए एक बाधा बन सकता है।

धर्मनिरपेक्ष भारत इमरान को कश्मीर के आतंकवादियों को अधिक मदद देता नजर आ सकता है। एक तो वह मानते हैं कि कश्मीर को पाकिस्तान का हिस्सा होना चाहिए और दूसरा, उन्हें सेना के कमांडरों के सामने यह साबित करना है कि वह उनके दिए काम को पूरा कर सकते हैं। भारत को ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़ सकता है कि न तो युद्ध हो और न ही शांति। इस माहौल में इमरान का इस्लाम की ओर झुकाव एक और पहलू जोड़ देता है। यह भी परिस्थिति को उलझा देता है। इसमें कोई छेड़छाड़ विनाशकारी परिणाम ला सकती है।

यह साबित करने के लिए कि वह लोगों के साथ हैं और जब कठिन परिस्थिति आएगी वह उनकी तरफ खड़े रहेंगे, इमरान को कुछ करना पड़ेगा, जादू से भी ज्यादा। वर्तमान में, उनके दिमाग में, वह फौज के आदमी हैं। यह एक ऐसी छवि है जिसे वह आसानी से नहीं मिटा पाएंगे।

इमरान को इसलिए पूर्ण बहुमत नहीं हासिल होने दिया पाक सेना ने

पाकिस्तान तहरीके-इंसाफ के नेता इमरान खान अब प्रधानमंत्री बनेंगे, इसमें जरा भी शक नहीं रह गया है। उन्हें स्पष्ट बहुमत नहीं मिला है लेकिन कई छोटी-मोटी पार्टियां और निर्दलीय उम्मीदवार उन्हें समर्थन देने के लिए बेताब हैं। नवाज शरीफ की मुस्लिम लीग और बिलावल भुट्टो की पीपल्स पार्टी को इतनी करारी शिकस्त मिली है और वे इस कदर बौखलाई हुई हैं कि वे अब इमरान खान को छूने के लिए भी तैयार नहीं हैं। ये दोनों पार्टियां मिलकर भी इमरान की पार्टी से बहुत कम हैं। यह तो ठीक है कि तहरीके-इंसाफ केंद्र में राज करेगी लेकिन उसे खैबर-पख्तूनख्वाह के अलावा किसी भी प्रांत में बहुमत नहीं मिला है। पंजाब में नवाज की लीग, सिंध में बिलावल और बलूचिस्तान में स्थानीय पार्टियां सबसे आगे हैं। इसका अर्थ क्या है ? इसका अर्थ यह है कि अपने बनने के 71 साल बाद भी पाकिस्तान राजनीतिक दृष्टि से चार हिस्सों में बंटा हुआ है। लेकिन पाकिस्तान की सेना ही वह एक मात्र ताकत है, जो इन चारों प्रांतों को एक सूत्र में बांधकर रखती है।

पाकिस्तान में अब वही होगा, जो फौज चाहेगी। इमरान की जीत फौज की जीत है। अपना वोट डालते वक्त पाकिस्तान के सेनापति कमर जावेद बाजवा ने पाकिस्तान की जनता को दो-टूक संदेश दे दिया। उन्होंने कहा कि पाकिस्तान के दुश्मनों को हराओ। कौन है, पाकिस्तान का दुश्मन उनकी नजर में ? नवाज शरीफ ! जो मोदी का यार है, वह गद्दार है। इसी नवाज को, जो कभी प्रचंड बहुमत से जीतकर पाकिस्तान का प्रधानमंत्री बना था, पहले अदालत ने भ्रष्टाचार के मामले में फंसाकर अपदस्थ कर दिया और फिर जेल में डाल दिया। नवाज की पार्टी किसी भी हालत में जीत न पाए, सेना ने इसका पूरा इंतजाम कर डाला। उनकी पार्टी के कई महत्वपूर्ण नेताओं का दल-बदल करवाया और लगभग डेढ़ सौ निर्दलीय उम्मीदवार खड़े करवा दिए। टीवी चैनलों और अखबारों के टेंटुए कस दिए गए।

इमरान को तो जीतना ही था लेकिन पाकिस्तान की फौज राजनीति की भी उस्ताद है। उसने इमरान को इतने बहुमत से नहीं जीतने दिया, जितने से नवाज शरीफ जीते थे। इमरान कहीं नवाज न बन जाएं, बेनजीर न बन जाएं, जुल्फिकार अली भुट्टो न बन जाएं और कहीं ऐसा न हो कि वे असली ताकत आजमाने लगें। खुद ही विदेश नीति और फौज को भी चलाने का दम भरने लगें। यदि ऐसा हुआ तो फौज को वही पैंतरे अपनाने पड़ेंगे, जो उसने उक्त पिछले तीनों प्रधानमंत्रियों के खिलाफ अपनाए थे।

जहां तक इमरान खान का सवाल है, वे कभी सत्ता में नहीं रहे। इसीलिए यह भविष्यवाणी करना आसान नहीं है कि फौज के साथ उनके संबंध कैसे रहेंगे ? वे पारंपरिक राजनेता भी नहीं रहे। 22 साल पहले वे राजनीति में आए। उसके पहले ही वे अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुके थे, क्रिकेट खिलाड़ी के तौर पर ! उनका अहंकार या स्वाभिमान पहले से आसमान छूता रहा है। पिछले 22 साल में उन्होंने किसी को नहीं बख्शा है। अब वे फौज की हां में हां कब तक मिला पाएंगे, कहना कठिन है। चुनाव-अभियान के दौरान उन्होंने उसी तरह की जुमलेबाजी की, जिससे फौज की बाछें खिल जाएं लेकिन चुनाव-परिणाम आने के बाद उन्होंने भारत से संबंध-सुधार और कश्मीर के बारे में जिन सधे हुए शब्दों का प्रयोग किया, उनमें नवाज शरीफ और आसिफ अली जरदारी की ध्वनि आ रही थी। भला, उसे फौज कब तक बर्दाश्त करेगी ? इमरान को यह सिद्ध करना पड़ेगा कि वे फौज के मुखौटा नहीं हैं।

इसमें शक नहीं कि बेनजीर भुट्टो, आसिफ अली जरदारी और नवाज शरीफ भी भारत से संबंध सुधारना चाहते थे। इन तीनों नेताओं और इमरान खान से भी मेरी कई बार घंटों बातचीत हुई है लेकिन मैंने हर बार महसूस किया है कि ज्यों ही भारत का सवाल उठता है फौज के आगे ये नेता बेबस हो जाते हैं। उसका एक बड़ा कारण यह भी है कि पाकिस्तान की जनता भी यही मानकर चलती है कि सिर्फ फौज ही उसे भारत से बचा सकती है। भारत का डर पाकिस्तान की रगों में दौड़ रहा है। जब तक यह नकली डर दूर नहीं होगा, न तो कोई भी पाकिस्तानी प्रधानमंत्री वास्तविक प्रधानमंत्री बन सकता है और न ही भारत-पाक संबंध सहज हो सकते हैं। क्या इमरान खान इस दुष्चक्र को तोड़ पाएंगे ? अगर वे तोड़ पाए तो वे वास्तव में 'नया पाकिस्तान' खड़ा कर सकते हैं।

पाकिस्तान की आम जनता आतंकवाद के बिल्कुल खिलाफ है। जितने लोग भारत और अफगानिस्तान में आतंक की बलि चढ़ते हैं, उससे कहीं ज्यादा पाकिस्तान में चढ़ते हैं। अभी इन चुनावों में ही लगभग 200 लोग मारे गए। मियां की जूती मियां के सिर ही पड़ती है, इस बात को पाकिस्तान के लोग अच्छी तरह से समझते हैं। इसीलिए फौज और चुनाव आयोग की मिलीभगत के कारण प्रतिबंधित आतंकी संगठनों के भी लगभग 460 उम्मीदवार खड़े हो गए लेकिन क्या हुआ ? उनमें से एक भी नहीं जीत पाया। इमरान खान जब तक फौज को नाराज करने के लिए तैयार नहीं होंगे, इन आतंकियों को काबू कैसे करेंगे ? भारत और अफगानिस्तान में सक्रिय आतंकियों की पीठ कौन ठोकता है, यह सबको पता है।

एक तरफ फौज और इमरान के भावी समीकरणों को लेकर अनिश्चितता बनी हुई है, दूसरी तरफ पाकिस्तान की लगभग सभी प्रमुख विरोधी पार्टियां एकजुट होकर इन चुनाव-परिणामों का वैसा ही विरोध कर रही हैं, जैसा कि 2013 में स्वयं इमरान ने किया था। यदि इमरान ने जोड़-तोड़ करके पंजाब प्रांत में अपनी सरकार बना भी ली तो भी अब उन्हें कई छोटे-मोटे राजनीतिक भूकंपों को झेलने के लिए तैयार रहना होगा। भुट्टो की पीपल्स पार्टी और नवाज की मुस्लिम लीग उनकी सरकार का जीना हराम कर देंगे। रावलपिंडी में फौज के मुख्यालय पर जनता के प्रदर्शन की बात तो पहली बार सुनी गई। बलूचिस्तान के लोगों के दिल में फौज के खिलाफ पहले से गहरी गांठ पड़ी हुई है। मुझे तो यह लगता है कि अब पाकिस्तान कहीं अस्थिरता और हिंसा के एक नए दौर में प्रवेश न कर जाए।

जहां तक भारत का सवाल है, वह पाकिस्तान की अंदरुनी राजनीति में क्यों उलझे ? उसे इमरान का स्वागत ही करना चाहिए, जैसा कि चीन ने किया है। इमरान जितनी बार भारत आए हैं और यहां उनके जितने मित्र और प्रशंसक हैं, उतने किसी भी पाकिस्तानी नेता के नहीं रहे हैं। इमरान ने भी भारत के साथ रिश्तों का एक नया अध्याय खोलने की बात कही है। भारत सरकार सीधे ही और उनके मित्रों के जरिए भी इमरान से बात का तार जोड़ सकती है और इमरान के जरिए वह पाकिस्तान की फौज से भी संवाद कायम कर सकती है। अपनी चुनावी चिंता के बावजूद मोदी सरकार यदि यह पहल कर सके तो कोई आश्चर्य नहीं कि दक्षिण एशिया को खाए जा रही यह 71 साल पुरानी प्रेत-बाधा दूर हो जाए।